प्रकाशन तिथि : 26 मई 2015, मूल्य 2 रुपये, वर्ष 33, अंक 11, कुल पृष्ठ 36

वीतराग-विज्ञान

(पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट का मुखपत्र)

सम्पादक :
डॉ. हुकमचंद भारिल्ल

अड़िन्दा पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, अड़िन्दा, तहसील-वल्लभनगर, उदयपुर (राज.)

वीतराग-विज्ञान (383)

हिन्दी, मराठी व कन्नड़ भाषा में प्रकाशित

जैनसमाज का सर्वाधिक बिक्रीवाला आध्यात्मिक मासिक

सम्पादक :
डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल
सह-सम्पादक :
डॉ. संजीवकुमार गोधा
प्रकाशक एवं मुद्रक :
ब्र. यशपाल जैन द्वारा पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के लिये जयपुर प्रिण्टर्स प्रा. लि., जयपुर से मुद्रित एवं प्रकाशित।
सम्पर्क-सूत्र :
पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट
ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015
फोन :(0141)2705581, 2707458
फैक्स : 2704127
E-mail : ptstjaipur@yahoo.com
शुल्क :

आजीवन	:	251 रुपये
वार्षिक	:	25 रुपये
एक प्रति	:	2 रुपये

मुद्रण संख्या :

हिन्दी	:	7200
मराठी	:	2000
कन्नड़	:	1000
कुल	:	10200

स्वभाव का आश्रय

अहो ! यह आत्मतत्त्व तो गहन है। उसका आँखें मूँदकर बाह्य का पंचेन्द्रियों का व्यापार बंद करके, मन के सम्बन्ध से विचार करे कि अहो ! यह आत्मवस्तु अचिन्त्य है, ज्ञायक...ज्ञायक...ज्ञायक ही है – ऐसा विकल्प से निर्णय करता है, वह भी परोक्ष निर्णय है। परोक्ष अर्थात् अभी प्रत्यक्ष स्वानुभव नहीं हुआ है, इसलिये उसे परोक्ष कहा है। मन के बाहर का बोझ बहुत कम कर दे तब मन के भीतर विचारों में लगता है, फिर वहाँ से भी हटकर अंतरस्वभावोन्मुख होकर उसकी महिमा में लीन होने पर आनन्द का अनुभव हो उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। ऐसा वस्तु का स्वभाव है और उसे प्राप्त करने का यह उपाय है। इसमें कुछ भी उलझन जैसा नहीं है। स्वभाव का आश्रय तो उलझन को सुलझा देता है। आजकल लोग बाह्य क्रियाकाण्ड में लग गये हैं, उन्हें तो मन से भी सच्चा निर्णय करने का भी समय नहीं है। 233

– द्रव्यदृष्टि जिनेश्वर, पृष्ठ 53-54

वीतराग-विज्ञान

वीतराग-विज्ञान ही, तीन लोक में सार।
वीतराग-विज्ञान का , घर-घर होय प्रसार।।

वर्ष : 33 (वीर नि. संवत् - 2541) 383 अंक : 11

देखो जी आदीश्वर स्वामी...

देखो जी आदीश्वर स्वामी, कैसा ध्यान लगाया है।
कर ऊपरि कर सुभग विराजै, आसन थिर ठहराया है।।टेक।।
जगत-विभूति भूतिसम तजकर, निजानन्द पद ध्याया है।
सुरभित श्वासा, आशा वासा, नासादृष्टि सुहाया है।।
देखो जी आदीश्वर स्वामी... ।।1।।
कंचन वरन चलै मन रंच न, सुरगिर ज्यों थिर थाया है।
जास पास अहि मोर मृगी हरि, जातिविरोध नसाया है।।
देखो जी आदीश्वर स्वामी... ।।2।।
शुध उपयोग हुताशन में जिन, वसुविधि समिध जलाया है।
श्यामलि अलकावलि शिर सोहै, मानों धुआँ उड़ाया है।।
देखो जी आदीश्वर स्वामी... ।।3।।
जीवन-मरन अलाभ-लाभ जिन,तृन-मनिको सम भाया है।
सुर नर नाग नमहिं पद जाकै, 'दौल' तास जस गाया है।।
देखो जी आदीश्वर स्वामी... ।।4।।

– कविवर पण्डित दौलतरामजी

सम्पादकीय

तत्त्वार्थमणिप्रदीप
(आचार्य उमास्वामी कृत तत्त्वार्थसूत्र की टीका)

(गतांक से आगे....)

द्रव्य का लक्षण

इसी अध्याय के २९-३०वें सूत्र में द्रव्य का लक्षण बताया गया है। अब द्रव्य के लक्षण को प्रकारान्तर से स्पष्ट करते हैं –

गुणपर्ययवद् द्रव्यम् ।।३८।।

द्रव्य, गुण और पर्यायवाला होता है।

जो द्रव्य के सम्पूर्ण भागों (प्रदेशों) और उसकी सम्पूर्ण अवस्थाओं (पर्यायों) में रहते हैं; उन्हें गुण कहते हैं।

जैसे – ज्ञान आत्मा का गुण है; वह आत्मा के समस्त (असंख्य) प्रदेशों और निगोद से लेकर मोक्ष तक की समस्त पर्यायों में पाया जाता है।

स्पर्श, रस, गंध और वर्ण पुद्गलद्रव्य के गुण हैं; वे पुद्गल के प्रदेशों और पर्यायों में पाये जाते हैं।

द्रव्य या गुणों के परिणमन को पर्याय कहते हैं। प्रत्येक द्रव्य के प्रत्येक गुण की प्रतिसमय एक पर्याय होती है। इसप्रकार **द्रव्य में गुण तो एक साथ होते हैं और पर्यायें क्रमशः होती हैं।**

यही कारण है कि गुणों को अन्वयी और पर्यायों को व्यतिरेकी कहा जाता है।

प्रश्न – २९-३०वें सूत्र में उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य से युक्त सत् को द्रव्य कहा था और यहाँ द्रव्य को गुण और पर्यायवाला बताया जा रहा है।

उत्तर – द्रव्य की उक्त दोनों परिभाषाओं में कोई विशेष अन्तर नहीं है; क्योंकि **पर्यायें उत्पाद-व्ययरूप होती हैं और गुण ध्रौव्यरूप। इसलिए चाहे द्रव्य को गुण-पर्यायवान कहें, चाहे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप सत् वाला कहें**

– एक ही बात है।।३८।।

कालद्रव्य

जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश – इन पाँच अस्तिकाय द्रव्यों की चर्चा तो विस्तार से हुई; पर बहुप्रदेशी न होने से अभी तक कालद्रव्य की चर्चा नहीं हुई; अत: अब उसकी चर्चा करते हैं –

कालश्च ।।३९।।

सोऽनन्तसमयः ।।४०।।

और काल भी द्रव्य है। वह कालद्रव्य अनन्त समयवाला है।

काल भी एक द्रव्य है; क्योंकि द्रव्य की उक्त परिभाषाएँ काल में भी पाई जाती हैं। वह गुण-पर्यायवाला तो है ही, उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य से भी सहित है। कालद्रव्य में अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व और प्रदेशत्व आदि सामान्य गुण और वर्तनाहेतुत्व विशेष गुण हैं; अत: वह गुणवाला है और निरन्तर परिवर्तनशील होने से पर्यायें भी उसके हैं ही।

उसका अस्तित्व है, पर बहुप्रदेशी नहीं होने से वह कायवान नहीं है। कालद्रव्य एकप्रदेशी है; अत: उसे अप्रदेशी भी कहा जाता है।

कालद्रव्य, एक-दो नहीं; असंख्य हैं। जितने लोकाकाश के प्रदेश हैं, उतने ही कालद्रव्य हैं। लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर एक-एक कालाणु द्रव्य, मणियों की भाँति खचित है।

उक्त संदर्भ में द्रव्यसंग्रह में एक गाथा प्राप्त होती है; जो इसप्रकार है–

लोयायासपदेसे इक्किक्के जे ठिया हु इक्किक्का।
रयणाणं रासी इव ते कालाणु असंखदव्वाणि ।।२२।।

लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर एक-एक कालाणु द्रव्य, रत्नों की राशि की भाँति पृथक्-पृथक् जड़े हुए हैं। वे कालाणु असंख्य द्रव्य हैं।

वह कालद्रव्य अनन्त समयवाला है। वर्तमान का एक समय, भूतकाल के अनन्त समय और उससे भी अनन्तगुणे भविष्य के समय – इसप्रकार वह कालद्रव्य, अनन्त समयवाला है।।३९-४०।।

गुण और पर्याय

३८वें सूत्र में द्रव्य को गुण-पर्यायवाला कहा था। अत: अब **गुण-पर्याय का स्वरूप स्पष्ट करते हैं –**

द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः ।।४१।।

तद्भावः परिणामः ।।४२।।

द्रव्य के आश्रय में रहनेवाले गुण स्वयं निर्गुण होते हैं। तात्पर्य यह है कि एक गुण के आश्रय में दूसरे गुण नहीं रहते।

द्रव्य या गुणों का होना अर्थात् प्रतिसमय बदलते रहना, परिणाम है।

द्रव्य और उसके गुणों में आधार-आधेय संबंध है। द्रव्य आधार है और गुण आधेय हैं।

जिसप्रकार तेल, तिलों के सभी अवयवों में व्याप्त रहता है; उसी प्रकार गुण भी द्रव्य के सभी प्रदेशों और पर्यायों में व्याप्त होकर रहते हैं।

जिसप्रकार द्रव्य में गुण पाये जाते हैं; उसीप्रकार एक गुण में अन्य गुण नहीं पाये जाते; इसलिए यहाँ गुणों को निर्गुण कहा गया है।

गुण दो प्रकार के होते हैं – १. सामान्य गुण और २. विशेष गुण।

१. जो गुण सब द्रव्यों में समानरूप से पाये जाते हैं; उन्हें **सामान्य गुण** कहते हैं। जैसे – अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व और प्रदेशत्व आदि गुण सभी द्रव्यों में पाये जाते हैं; अत: **ये सामान्य गुण हैं।**

२. जो गुण जिस द्रव्य की विशेषता को बताते हैं और मात्र उसी द्रव्य में पाये जाते हैं; वे गुण उस द्रव्य के **विशेष गुण** हैं। जैसे – **चेतनत्व** जीव द्रव्य का विशेष गुण है; **मूर्त्तत्व** पुद्गलद्रव्य का विशेष गुण है; **गतिहेतुत्व** धर्मद्रव्य का विशेष गुण है; **गमनपूर्वक स्थितिहेतुत्व** अधर्मद्रव्य का विशेष गुण है; **अवगाहनहेतुत्व** आकाश द्रव्य का विशेष गुण है और **परिणमनहेतुत्व** कालद्रव्य का विशेष गुण है।

प्रश्न – यहाँ द्रव्य के आश्रय में रहना और अन्य गुण से रहित होना गुण का स्वरूप कहा है। पर पर्याय भी तो द्रव्य के आश्रय में रहती है और उसमें कोई गुण नहीं रहता; अत: निर्गुण भी है।

– ऐसी स्थिति में गुण और पर्याय में कुछ अन्तर नहीं रहता।

उत्तर – गुण द्रव्य के आश्रय में नित्य रहते हैं, पर्यायें नित्य नहीं हैं, अनित्य हैं। गुण अक्रमवर्ती होते हैं और पर्यायें क्रमवर्ती। इसलिए पर्यायें गुणों से भिन्न हैं।

इसलिए गुण की उक्त परिभाषा पर्यायों में नहीं रहती; अत: उक्त कथन में कोई दोष नहीं है।।४१-४२।।

इसप्रकार यहाँ पाँचवाँ अध्याय समाप्त होता है।

छठवाँ अध्याय

पृष्ठभूमि

यह तो पहले स्पष्ट किया ही जा चुका है कि तत्त्वार्थों को द्रव्य-तत्त्वार्थ और पर्याय-तत्त्वार्थ के रूप में भी विभाजित किया जाता है। जीव और अजीवरूप द्रव्य-तत्त्वार्थों की चर्चा विगत पाँच अध्यायों में विस्तार से की जा चुकी है।

अब पर्याय-तत्त्वार्थों की चर्चा प्रसंग प्राप्त है।

पर्याय-तत्त्वार्थों में सर्वप्रथम आस्रव तत्त्वार्थ की चर्चा आरंभ करते हैं; जो दो अध्यायों में समाप्त होगी। छठवें अध्याय में आस्रव तत्त्वार्थ के सामान्य स्वरूप को स्पष्ट करने के उपरान्त ज्ञानावरणादि आठों कर्मों के आस्रवों के कारणों पर विचार करेंगे।

सातवें अध्याय में व्यवहार से धर्म कहे जानेवाले शुभभावरूप या पुण्यकर्मरूप आस्रव तत्त्वार्थ का निरूपण होगा।

आस्रव तत्त्वार्थ का सामान्य स्वरूप

अब आस्रव तत्त्वार्थ का स्वरूप स्पष्ट करते हुए सर्वप्रथम योग की चर्चा करते हैं –

कायवाङ् मनःकर्म योगः ।।१।।

स आस्रवः ।।२।।

शुभः पुण्यस्याशुभः पापस्य ।।३।।

सकषायाकषाययोः साम्परायिकेर्यापथयोः ।।४।।

काय, वचन और मन की क्रिया को योग कहते हैं।

वह योग ही आस्रव है।

शुभयोग से पुण्यकर्म का आस्रव होता है और अशुभयोग से पापकर्म का आस्रव होता है।

कषाय सहित जीवों के सांपरायिक आस्रव होता है और कषाय रहित जीवों के ईर्यापथ आस्रव होता है।

वस्तुत: तो आत्मप्रदेशों के परिस्पन्द (हलन-चलन) का नाम योग है; आत्मप्रदेशों का यह परिस्पन्द काय, वचन और मन के योग के निमित्त से होता है। इसप्रकार **निमित्त के भेद से योग तीन प्रकार का हो जाता है;** जो इसप्रकार है –

१. काययोग, २. वचनयोग और ३. मनोयोग।

१. काय (शरीर) के योग से जो आत्मप्रदेशों का हलन-चलन होता है; उसे **काययोग** कहते हैं।

२. वचन (वाणी) के योग से जो आत्मप्रदेशों का हलन-चलन होता है; उसे **वचनयोग** कहते हैं।

३. मन के योग से जो आत्मप्रदेशों का हलन-चलन होता है; उसे **मनोयोग** कहते हैं।

यह तीन प्रकार का योग ही आस्रव है।

आस्रव माने आना। योग के निमित्त से आत्मा में कर्मों का आना ही आस्रव है। इसलिए यह कहा गया है कि योग ही आस्रव है।

योग के द्वारा जो कर्म आते हैं; वे कर्म, पुण्यकर्म और पापकर्म के भेद से दो प्रकार के होते हैं।

शुभयोग से पुण्यकर्म का आस्रव होता है और अशुभयोग से पाप कर्म का आस्रव होता है।

जीवों के प्राणों का घात करना, चोरी करना, मैथुन सेवन करना आदि **अशुभ शारीरिक कार्य काययोग** है।

झूठ बोलना, कठोर बोलना **अशुभ वचनयोग** है।

विषयभोग के परिणाम अथवा किसी का बुरा सोचना **अशुभ मनोयोग** है।

इसीप्रकार –

प्राणियों की रक्षा करना आदि शारीरिक कार्य **शुभ काययोग** है।

हित-मित-प्रिय बोलना **शुभ वचनयोग** है।

दूसरों का भला सोचना **शुभ मनोयोग** है।

यहाँ एक **प्रश्न** संभव है कि पापरूप घातिकर्मों का बंध शुभयोग के समय भी होता रहता है; अत: यह कहना कहाँ तक ठीक है कि शुभयोग से पुण्यकर्म का बंध होता है?

उत्तर – यह तो हम सभी जानते हैं कि घातिकर्मों में पुण्य-पाप संबंधी भेद नहीं होता; क्योंकि घातिकर्म तो सभी पाप हैं।

पुण्य-पाप का भेद तो अघातिकर्मों में ही होता है। अत: तीसरे सूत्र के कथन को अघाति कर्मों की अपेक्षा से किया गया कथन ही समझना चाहिए।

तात्पर्य यह है कि शुभयोग से अघातिकर्मों की पुण्य प्रकृतियों का बंध होता है और अशुभयोग से अघातिकर्मों की पाप प्रकृतियों का बंध होता है।

कषाय सहित जीवों के होनेवाले संसार के कारणभूत आस्रव को **सांपरायिक आस्रव** कहते हैं और कषाय रहित जीवों के स्थिति-अनुभाग बंध से रहित केवल योगों से होनेवाले आस्रव को **ईर्यापथ आस्रव** कहते हैं।

इसप्रकार आस्रव, स्वामी की अपेक्षा से **सांपरायिक आस्रव** और **ईर्यापथ आस्रव** के भेद से दो प्रकार का होता है।

योग से प्रकृति बंध और प्रदेश बंध होता है और कषाय से स्थिति और अनुभाग बंध होता है। कहा भी है –

पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसभेदा दु चदुविधो बन्धो।
जोगा पयडिपदेसा ठिदिअणुभागा कसायदो होंति।।[१]

प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश के भेद से बंध चार प्रकार का होता है। इनमें प्रकृति और प्रदेश बन्ध योग से तथा स्थिति और अनुभाग बंध कषाय से होता है।

यहाँ एक **प्रश्न** संभव है कि क्या बंध के कारण योग और कषाय ही हैं; इनके अतिरिक्त अन्य कोई नहीं ?

१. द्रव्यसंग्रह, गाथा ३३

उत्तर – इसी महाशास्त्र तत्त्वार्थसूत्र में बंध के कारण गिनाते हुए कहा है –

मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगा बन्धहेतवः ।।१।।[१]

मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग – ये पाँच बंध के कारण अर्थात् आस्रवभाव हैं।

प्रश्न – द्रव्यसंग्रह और इस ग्रन्थ के आठवें अध्याय के कथनों में यह अन्तर क्यों है ?

उत्तर – द्रव्यसंग्रह में ही क्यों; इसी ग्रन्थ के आठवें अध्याय के दूसरे सूत्र में लिखा है –

सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान् पुद्गलानादत्ते स बन्धः ।।२।।[२]

कषाय सहित होने से जीव जो कर्म के योग्य पुदगलों को ग्रहण करता है, उसे बंध कहते हैं।

आठवें अध्याय के उक्त सूत्रों की व्याख्या यथास्थान विस्तार से की जावेगी; पर अभी यहाँ इतना जान लो कि यहाँ कषाय शब्द से मात्र कषायें ही नहीं लेना; अपितु कषाय है अन्त में जिनके – ऐसे मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद और कषाय लेना चाहिए; क्योंकि संसार को बढ़ानेवाला सांपरायिक आस्रव अकेली कषायों से ही नहीं, अपितु मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद और कषाय – इन चारों से होता है।

पहले गुणस्थान से दसवें गुणस्थान तक स्थिति और अनुभाग बंध सहित **सांपरायिक आस्रव** होता है; क्योंकि वहाँ तक कषायांश विद्यमान रहता है; परन्तु उसके आगे ग्यारहवें से लेकर तेरहवें गुणस्थान तक कषायांश न होने से स्थिति और अनुभाग बंध से रहित योगों से होनेवाला **ईर्यापथ आस्रव** होता है ।।१-४।।

साम्परायिक आस्रव

अब साम्परायिक आस्रव की चर्चा करते हुए सूत्र कहते हैं; जो इसप्रकार है –

इन्द्रियकषायाव्रतक्रियाः पञ्चचतुःपञ्चपञ्चविंशतिसंख्याः पूर्वस्य भेदाः ।।५।।

१. तत्त्वार्थसूत्र, अध्याय ८, सूत्र १
२. वही, सूत्र २

इन्द्रियाँ पाँच, कषायें चार, अव्रत पाँच और क्रियायें पच्चीस – ये सब सांपरायिक आस्रव के भेद हैं।

स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण – ये पाँच इन्द्रियाँ हैं।

क्रोध, मान, माया और लोभ – ये चार कषायें हैं।

हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म (कुशील) और परिग्रह – उक्त पाँच पापों के अत्यागरूप पाँच अव्रत हैं।

इन्द्रियों, कषायों और अव्रतों की चर्चा यथास्थान हो चुकी है या होगी। अब यहाँ पच्चीस क्रियाओं की चर्चा करते हैं –

१. सम्यक्त्व क्रिया – चैत्य, गुरु और शास्त्र की पूजा आदि रूप सम्यक्त्व को बढ़ानेवाली क्रिया सम्यक्त्व क्रिया है।

२. मिथ्यात्व क्रिया – मिथ्यात्व के उदय से जो अन्य देवताओं के स्तवन आदि रूप क्रिया होती है, वह मिथ्यात्व क्रिया है।

३. प्रयोग क्रिया – शरीर आदि द्वारा गमनागमन आदि रूप प्रवृत्ति प्रयोग क्रिया है।

४. समादान क्रिया – संयत का अविरति के सन्मुख होना समादान क्रिया है।

५. ईर्यापथ क्रिया – ईर्यापथ की कारणभूत क्रिया ईर्यापथ क्रिया है।

६. प्रादोषिकी क्रिया – क्रोध के आवेश से प्रादोषिकी क्रिया होती है।

७. कायिकी क्रिया – दुष्टभाव युक्त होकर उद्यम करना कायिकी क्रिया है।

८. आधिकरणिकी क्रिया – हिंसा के साधनों को ग्रहण करना आधिकरणिकी क्रिया है।

९. पारितापिकी क्रिया – जो दुःख की उत्पत्ति का कारण है, वह पारितापिकी क्रिया है।

१०. प्राणातिपातिकी क्रिया – आयु, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, बलरूप प्राणों का वियोग करनेवाली प्राणातिपातिकी क्रिया है।

११. दर्शन क्रिया – रागवश प्रमादी का रमणीय रूप के देखने का अभिप्राय दर्शन क्रिया है।

१२. स्पर्शन क्रिया – प्रमादवश स्पर्श करने लायक सचेतन पदार्थ का अनुबन्ध स्पर्शन क्रिया है।

१३. प्रात्ययिकी क्रिया – नये अधिकरणों को उत्पन्न करना प्रात्ययिकी क्रिया है।

१४. समन्तानुपात क्रिया – स्त्री-पुरुषों और पशुओं के जाने-आने, उठने और बैठने के स्थान में भीतरी मल का त्याग करना समन्तानुपात क्रिया है।

१५. अनाभोग क्रिया – प्रमार्जन और अवलोकन नहीं की गई भूमि पर शरीर आदि का रखना अनाभोग क्रिया है।

१६. स्वहस्त क्रिया – जो क्रिया दूसरों के द्वारा करने की हो, उसे स्वयं कर लेना स्वहस्त क्रिया है।

१७. निसर्ग क्रिया – पापादान आदिरूप प्रवृत्ति विशेष के लिए सम्पत्ति देना निसर्ग क्रिया है।

१८. विदारण क्रिया – दूसरे ने जो सावद्यकार्य किया है, उसे प्रकाशित करना विदारण क्रिया है।

१९. आज्ञाव्यापादिकी क्रिया – चारित्रमोहनीय के उदय से आवश्यक आदि के विषय में शास्त्रोक्त आज्ञा को न पाल सकने के कारण अन्यथा निरूपण करना आज्ञाव्यापादिकी क्रिया है।

२०. अनाकांक्ष क्रिया – धूर्तता, शठता और आलस्य के कारण शास्त्र में उपदेशी गयी विधि का अनादर करना अनाकांक्ष क्रिया है।

२१. प्रारंभ क्रिया – छेदना, भेदना आदि क्रिया में स्वयं तत्पर रहना और दूसरे के करने पर हर्षित होना प्रारम्भ क्रिया है।

२२. पारिग्राहिकी क्रिया – परिग्रह का नाश न हो, इसलिए जो क्रिया की जाती है, वह पारिग्राहिकी क्रिया है।

२३. माया क्रिया – ज्ञान-दर्शन आदि के विषय में छल करना माया क्रिया है।

२४. मिथ्यादर्शन क्रिया – मिथ्यादर्शन के साधनों से युक्त पुरुष को प्रशंसा आदि के द्वारा दृढ़ करना कि तू ठीक करता है, मिथ्यादर्शन क्रिया है।

२५. अप्रत्याख्यान क्रिया – संयम का घात करनेवाले कर्म के उदय से त्यागरूप परिणामों का न होना अप्रत्याख्यान क्रिया है।

आचार्य पूज्यपाद ने सर्वार्थसिद्धि ग्रन्थ में इन क्रियाओं को पाँच-पाँच के पाँच समूहों में विभाजित किया है।

उक्त सभी क्रियायें साम्परायिक आस्रव की कारण हैं।

इनमें इन्द्रियाँ, कषायें, अव्रत – ये तीन कारणरूप हैं और पच्चीस क्रियायें कार्यरूप हैं।।५।।

आस्रवभाव में विशेषता

आस्रवों के कारण व भेदों की चर्चा के उपरान्त अब उनकी विशेषताओं की चर्चा करते हैं –

तीव्रमन्दज्ञाताज्ञातभावाधिकरणवीर्यविशेषेभ्यस्तद्विशेषः ।।६ ।।

तीव्र भाव, मंद भाव, ज्ञात भाव, अज्ञात भाव, अधिकरण और वीर्य – इनकी विशेषता से आस्रव भाव में विशेषता हो जाती है, भेद पड़ जाता है।

१. क्रोधादि कषायों की तीव्रता को तीव्र भाव कहते हैं।

२. कषायों की मंदता को मन्द भाव कहते हैं।

३. इस प्राणी का मुझे हनन करना चाहिए – इसप्रकार जानकर प्रवृत्ति करना ज्ञात भाव है।

४. मद या प्रमाद के कारण बिना जाने प्रवृत्ति करना अज्ञात भाव है।

५. जिसमें पदार्थ रखे जाते हैं, वह अधिकरण है।

६. द्रव्य की अपनी शक्तिविशेष वीर्य है।

उक्त कारणों से आस्रव भावों में विशेषता आ जाती है, अन्तर पड़ जाता है।

विगत सूत्र में वर्णित पाँच इन्द्रियाँ, चार कषायें, पाँच अणुव्रत और पच्चीस क्रियाओं में से किसी एक कारण से होनेवाले कर्मास्रव में भी तीव्रभाव-मन्दभाव आदि कारणों से अंतर पड़ जाता है। तीव्र भाव से अधिक आस्रव होता है और मन्दभाव से अल्प आस्रव होता है। ज्ञातभाव से अधिक आस्रव होता है और

अज्ञातभाव से अल्प आस्रव होता है। अधिक हिंसा करने की शक्तिवाले साधनरूप अधिकरण से अधिक आस्रव होता है और कम हिंसा की शक्तिवाले साधनरूप अधिकरण से अल्प आस्रव होता है। शक्तिविशेष को वीर्य कहते हैं। अधिक वीर्य सहित प्रवर्तमान हिंसादि द्वारा अधिक आस्रव होता है और कम वीर्य से प्रवर्त्तमान हिंसादि द्वारा अल्प आस्रव होता है।।६।।

अधिकरण

आस्रवभाव में होनेवाली विशेषताओं की चर्चा के उपरान्त अब आस्रव के अधिकरणों की चर्चा करते हैं; जो इसप्रकार है –

अधिकरणं जीवाजीवाः।।७।।

आद्यं संरम्भसमारम्भारम्भयोगकृतकारितानुमतकषायविशेषैस्त्रिस्त्रिस्त्रि-श्चतुश्चैकशः।।८।।

निर्वर्तना निक्षेपसंयोगनिसर्गाद्विचतुर्द्वित्रिभेदाः परम्।।९।।

आस्रव के आधार जीव और अजीव हैं। इसप्रकार अधिकरण दो प्रकार का हो गया – १. जीवाधिकरण और २. अजीवाधिकरण।

आदि (आरंभ) का जीवाधिकरण १०८ प्रकार का है – संरम्भ, समारंभ और आरंभ – ये तीन; मन, वचन और काय – ये तीन; कृत, कारित और अनुमोदना – ये तीन एवं क्रोध, मान, माया और लोभ – ये चार कषायें – कुल मिलाकर ३×३×३×४=१०८ प्रकार का जीवाधिकरण होता है।

निर्वर्तना २, निक्षेप ४, संयोग २ और निसर्ग ३ – ये सब अजीवाधिकरण के भेद हैं।

विगत सूत्र में अधिकरण की चर्चा आई है। उसी बात को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि आधार की अपेक्षा आस्रव दो प्रकार का होता है – १. जीवास्रव और २. अजीवास्रव।

यहाँ जीवास्रव के १०८ प्रकार बताये गये हैं। तात्पर्य यह है कि **जीव के १०८ प्रकार के भावों से कर्मों का आस्रव होता है; इसलिए जीवास्रव को भावास्रव भी कहते हैं।**

आलोचना पाठ में हम प्रतिदिन बोलते हैं –

समरंभ समारंभ आरंभ मन वचन तन कीने प्रारंभ।
कृत कारितमोदन करिके क्रोधादि चतुष्टय धरिके।।४।।
शत आठ जु इन भेदन तैं अघ कीने परिछेदन तैं।
तिनकी कहुँ को लों कहानी तुम जानत केवलज्ञानी।।५।।

किसी काम के करने के संकल्प को **संरम्भ,** उसके साधनों को इकट्ठे करने को **समारंभ** और कार्य शुरू कर देने को **आरंभ** कहते हैं।

स्वयं करना **कृत** है, दूसरों से कराना **कारित** है और किये गये कार्य की सराहना करना **अनुमोदना** है।

मन, वचन, काय और चार कषायें पहले स्पष्ट की जा चुकी हैं। इन सबके परस्पर गुणा कर देने पर १०८ भंग बन जाते हैं।

तात्पर्य यह है कि क्रोधादि चार और कृत आदि तीन के भेद से कायादि योगों के संरम्भ, समारम्भ और आरम्भ से विशिष्ट करने पर प्रत्येक के छत्तीस-छत्तीस भेद होते हैं।

१. क्रोधकृतकायसंरम्भ, २. मानकृतकायसंरम्भ, ३. मायाकृतकाय संरम्भ, ४. लोभकृतकायसंरम्भ, ५. क्रोधकारितकाय संरम्भ, ६. मान कारितकायसंरम्भ, ७. मायाकारितकायसंरम्भ, ८. लोभकारितकाय संरम्भ, ९. क्रोधानुमतकायसंरम्भ, १०. मानानुमतकायसंरम्भ, ११. मायानुमतकायसंरम्भ और १२. लोभानुमतकायसंरम्भ।

इसप्रकार संरम्भ बारह प्रकार का है।

समारम्भ और आरम्भ भी इसी तरह बारह-बारह प्रकार के होकर कुल छत्तीस प्रकार काययोग के होते हैं।

इसीतरह वचन और मन के भी छत्तीस-छत्तीस प्रकार मिलकर कुल १०८ प्रकार जीवाधिकरण के होते हैं।

अब अजीवाधिकरण की चर्चा करते हैं –

(क) उत्पन्न करने, रचना करने या बनाने को निर्वर्त्तना कहते हैं।

मूलगुण निर्वर्त्तना और उत्तरगुण निर्वर्त्तना के भेद से निर्वर्त्तना दो प्रकार की

होती है।

१. मन, वचन, काय, प्राण और अपान अर्थात् श्वासोच्छ्वास की रचना **मूलगुणनिर्वर्त्तना** है।

२. काष्ठादि पर चित्रादि बनाना, पुस्तकें लिखना, **उत्तरगुण निर्वर्त्तना** है।

(ख) रखने को निक्षेप कहते हैं। निक्षेप चार प्रकार का होता है।

१. बिना देखे वस्तु को रख देना **अप्रत्यवेक्षित निक्षेप** है।

२. दुष्टतापूर्वक असावधानी से वस्तु को रखना **दुष्प्रमृष्ट निक्षेप** है।

३. किसी भयवश या अन्य कार्य करने की जल्दी में वस्तु को पटक देना **सहसा निक्षेप** है।

४. बिना देखी हुई या बिना साफ की हुई जमीन पर पड़े रहना **अनाभोग निक्षेप** है।

प्रश्न – निक्षेपों की चर्चा पहले भी आई है।

उत्तर – वे निक्षेप अलग हैं और ये निक्षेप सामान रखने रूप हैं। ये आस्रवभाव रूप हैं और वे प्रमाण और नयों के साथ जानने के उपाय के रूप में आये हैं।

(ग) अनेक वस्तुओं के मिलाने को **संयोग** कहते हैं। उसके दो भेद हैं – उपकरण संयोग और भक्तपान संयोग।

१. शीत-उष्ण या शुद्ध-अशुद्ध उपकरणों को मिला देना **उपकरण संयोग** है।

२. सचित्त-अचित्त खान-पान को मिला देना **भक्तपान संयोग** है।

(घ) प्रवृत्ति करने का नाम **निसर्ग** है। वह तीन प्रकार का होता है – मनोनिसर्ग, वाग्निसर्ग और कायनिसर्ग।

१. दुष्टतापूर्वक मन की प्रवृत्ति करना **मनोनिसर्ग** है।

२. दुष्टतापूर्वक वचन की प्रवृत्ति करना **वाग्निसर्ग** है।

३. दुष्टतापूर्वक काय की प्रवृत्ति करना **कायनिसर्ग** है।

इसप्रकार अजीवाधिकरण ग्यारह प्रकार का होता है।।७-९।।

दर्शनावरण और ज्ञानावरण के आस्रव के कारण

अबतक कर्म सामान्य के आस्रव के कारणों का निरूपण किया।

अब कर्मविशेष के आस्रव के कारणों की चर्चा करते हैं।

अत: सर्वप्रथम ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्म के आस्रवों के कारणों की चर्चा आगामी सूत्र में करते हैं; जो इसप्रकार है –

तत्प्रदोषनिह्नवमात्सर्यान्तरायासादनोपघाताज्ञानदर्शनावरणयो: ।।१०।।

ज्ञान और दर्शन के विषय में प्रदोष, निह्नव, मात्सर्य, अन्तराय, आसादन और उपघात – ये ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्म के आस्रव के कारण हैं।

१. प्रदोष – मोक्ष के साधनभूत दर्शन व तत्त्वज्ञान के उपदेशक से ईर्ष्याभाव रखना प्रदोष है।

२. निह्नव – मुक्ति के कारणभूत ज्ञान व दर्शन का अपलाप करना निह्नव है।

३. मात्सर्य – प्राप्त दर्शन व तत्त्वज्ञान को ईर्ष्याभाव से नहीं देना मात्सर्य है।

४. अन्तराय – किसी के दर्शन व ज्ञानाभ्यास में विघ्न डालना अन्तराय है।

५. आसादन – दर्शन व ज्ञान का आदर नहीं करना, उसके उपदेष्टा को रोक देना आसादन या आसादना है।

६. उपघात – दर्शन व ज्ञान को एकदम झूठा बतलाना उपघात है।

इन छह कारणों से दर्शनावरण और ज्ञानावरण का बंध होता है।

यदि ये छह बातें दर्शन के सम्बन्ध में हो तो दर्शनावरण कर्म का और ज्ञान के संबंध में हो तो ज्ञानावरण कर्म का बंध होता है।।१०।।

वेदनीय कर्म के आस्रव के कारण

ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्म के आस्रवों के कारणों की चर्चा के उपरान्त अब वेदनीय कर्म के आस्रवों के कारणों की चर्चा दो सूत्रों के माध्यम से करते हैं; जो इसप्रकार हैं –

**दु:खशोकतापाक्रन्दनवधपरिदेवनान्यात्मपरोभय-
स्थानान्यसद्वेद्यस्य ।।११।।**

**भूतव्रत्यनुकम्पादानसरागसंयमादियोग: क्षान्ति: शौच-
मिति सद्वेद्यस्य ।।१२।।**

दु:ख, शोक, ताप, आक्रन्दन, वध और परिदेवन – इन्हें स्वयं को, पर

को और दोनों को करने से असातावेदनीय कर्म का आस्रव होता है।

प्राणियों पर दया करना और व्रतियों को दान देना, राग सहित संयम पालना, एकदेश संयम पालना, क्षमाभाव और शौच (निर्लोभ) भाव रखना – इन सबसे साता वेदनीय कर्म का आस्रव होता है।

१. पीड़ारूप परिणामों को **दु:ख** कहते हैं।

२. इष्ट के वियोग होने पर होनेवाले विकल परिणामों को **शोक** कहते हैं।

३. तीव्र पश्चाताप होने को **ताप** कहते हैं।

४. दु:खी होकर जोर-जोर से रोने को **आक्रन्दन** कहते हैं।

५. किसी के प्राणों का घात करना **वध** है।

६. अत्यन्त दु:खी होकर ऐसा रुदन करना कि जिसे सुनकर, सुनने वाले का हृदय द्रवित हो जावे, उसे **परिदेवन** कहते हैं।

इसप्रकार जो स्वयं दु:खी होता है, दूसरों को दु:खी करता है, रुलाता है और स्व-पर दोनों को दु:खी करता है; उसे असाता वेदनीय कर्म का आस्रव होता है।

सामान्य से सभी प्राणियों को भूत कहते हैं।

व्यन्तर जाति के देवों में जो भूत नामक व्यन्तर देव होते हैं, उनका यहाँ कुछ भी संबंध नहीं है।

भूत अर्थात् सामान्य प्राणियों पर अनुकम्पा करना और अणुव्रतियों को आमंत्रण पूर्वक ससम्मान भोजन कराना, विशेष कर महाव्रतियों को नवधा भक्तिपूर्वक आहारादि का दान देना, सरागसंयम, संयमासंयम पालना, योगों की साधना करना, शान्ति रखना और पवित्रता रखना, तीव्र लोभादि नहीं करना – इसप्रकार की प्रवृत्तियों से सातावेदनीय कर्म का आस्रव होता है।

भूतव्रत्यनुकम्पादान पद का अर्थ इसप्रकार भी किया जा सकता है–

सामान्य प्राणियों व व्रतियों पर अनुकंपा करना और दोनों को यथायोग्य सम्मानपूर्वक दान देना साता वेदनीय के बंध का कारण है।

अनुकम्पा भी दो प्रकार की होती है –

१. भूतानुकम्पा और २. व्रत्यनुकंपा।

इसप्रकार भूतों अर्थात् सामान्य प्राणियों को अनुकम्पा दान और व्रतियों को ससम्मान यथायोग्य आहारादि दान देना चाहिए।

व्रती भी अणुव्रती और महाव्रती के भेद से दो प्रकार के होते हैं। इसप्रकार अणुव्रतियों को ससम्मान आमंत्रणपूर्वक आहारादि देना और महाव्रतियों को नवधाभक्तिपूर्वक आहारादि देना साता वेदनीय के आस्रव के कारणरूप भाव हैं।

व्रतों का वर्णन आगे सातवें अध्याय में विस्तार से होगा।।११-१२।।

मोहनीय कर्म के आस्रव के कारण

वेदनीय कर्म के उपरान्त अब मोहनीय कर्म के आस्रव के कारणों की चर्चा करते हैं; जो इसप्रकार है –

केवलिश्रुतसंघधर्मदेवावर्णवादो दर्शनमोहस्य।।१३।।

कषायोदयात्तीव्रपरिणामश्चारित्रमोहस्य।।१४।।

केवली, शास्त्र, संघ, धर्म और देवों का अवर्णवाद करने (झूठा दोष लगाने) से दर्शनमोह का आस्रव होता है।

कषाय के उदय से परिणामों में तीव्र कलुषता होने से चारित्र मोहनीय कर्म का आस्रव होता है।

अरहंत भगवान कवलाहार करते हैं। इसप्रकार के कथन केवली भगवान का अवर्णवाद हैं।

शास्त्रों में मांसाहार की आज्ञा दी गई है – इसप्रकार के कथन करना श्रुत (शास्त्र) का अवर्णवाद है।

साधुओं के संघ पर झूठे दोष लगाना संघ का अवर्णवाद है।

अहिंसामयी रत्नत्रय धर्म पर तरह-तरह के दोष लगाना, वीतरागी धर्म को रागमय बताना धर्म का अवर्णवाद है।

इसीप्रकार देवगति के देवों पर दोष लगाना, उन्हें शराबी, मांसभक्षी बताना देवों का अवर्णवाद है।

इसप्रकार देव, शास्त्र, गुरु, धर्म व देवगति के देवों पर झूठे दोष लगाने से दर्शन मोहनीय अर्थात् मिथ्यात्व कर्म का आस्रव होता है।

तथा कषाय के उदय से होनेवाले तीव्र क्रोधादि भावों से चारित्र मोहनीय अर्थात् क्रोधादि कषायरूप कर्मों का आस्रव होता है।।१३-१४।। **(क्रमश:)**

छहढाला प्रवचन

सम्यग्ज्ञान की महिमा

सकल द्रव्य के गुन अनन्त पर्याय अनन्ता।
जानै एकै काल प्रकट केवलि भगवन्ता ।।
ज्ञान समान न आन जगत में सुख को कारन ।
इह परमामृत जन्म-जरा-मृतु रोग निवारन ।।४ ।।
कोटि जन्म तप तपैं ज्ञान बिन कर्म झरैं जे ।
ज्ञानी के छिन मांहि त्रिगुप्ति तैं सहज टरैं ते ।।
मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो ।
पै निज आतम ज्ञान बिना सुख लेश न पायौ ।।५ ।।

(सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक विद्वान पण्डित दौलतरामजीकृत छहढाला की चौथी ढाल पर गुरुदेवश्री के प्रवचन पाठकों के लाभार्थ यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं।)

(गतांक से आगे....)

अहो, सम्यग्ज्ञान तो परम अमृत है। 'अमृत' अर्थात् मरण रहित मोक्ष पद, जो कि सम्यग्ज्ञान से प्राप्त होता है, अत: सम्यग्ज्ञान परम अमृत है, वह जन्म-जरा-मरण के रोग को मेटकर मोक्षरूपी अमर पद देनेवाला है। बाहर की पढाई और लौकिक ज्ञान जिसमें काम नहीं आता, जो आत्मा में से ही आता है – ऐसा यह सम्यग्ज्ञान परम अमृत है। आत्मा का स्वभाव अनाकुल आनन्दरूप अमृत है, उसमें तन्मय होकर उसको जाननेवाला ज्ञान भी आनन्दरूप हुआ है, अत: वह भी परम अमृत है और ऐसे स्वरूप को दिखानेवाली वाणी को भी उपचार से अमृत कहा जाता है। 'वचनामृत वीतरागना परम शांतरस मूल' ऐसी वीतराग वाणी द्वारा होनेवाला आत्मा का सम्यग्ज्ञान जीव के भव रोग को मिटानेवाली अमोघ औषधि है। शरीर में भले वृद्धावस्था हो या बालक अवस्था हो, नरक में हो या स्वर्ग में हो, रोगादि हो या निरोगता हो; परन्तु ऐसा सम्यग्ज्ञान सर्वत्र परम शान्ति देनेवाला है।

आत्मा का ज्ञान, आनन्द सहित है, जिसमें आनन्द नहीं वह ज्ञान नहीं। जो दु:ख का कारण हो उसे ज्ञान कौन कहे ? वह तो अज्ञान है। ज्ञान तो तीनकाल तीनलोक में अपूर्व सुख का ही कारण होता है, वह परम अमृत है। ऐसा ज्ञान ही जन्म-मरण का नाश करके मुक्ति सुख पाने का उपाय है, ज्ञान के अतिरिक्त अन्य उपाय जगत में नहीं है। जो जीव पहले सिद्ध हुए हैं, वर्तमान में हो रहे हैं और भविष्य में होंगे, वे सब भेदज्ञान से ही सिद्ध हुए हैं, हो रहे हैं और होंगे – ऐसा जानो।

जो हो गये हैं सिद्ध वे सब भेदज्ञान प्रभाव से ।
जो बंध होता जीव को वह भेदज्ञान अभाव से ।।

ऐसा जानकर हे जीव ! तू अतुल धारा से भेदज्ञान को भा, रागादि से भिन्न शुद्धात्मा को जानकर उसको ही निरन्तर भा। भेदज्ञानी जीव सदा आत्मा के आनन्द में केलि करता है और केलि करते-करते वह मुक्ति को प्राप्त कर लेता है।

अहो, मैं तो परमानन्द स्वरूप हूँ, जगत से भिन्न और स्वयं से परिपूर्ण हूँ, सिद्ध भगवान जैसा मेरा चैतन्य पद है, इसप्रकार जिस ज्ञान ने आत्मा की कीमत की, उस ज्ञान में अपूर्व ज्ञानकला उघड़ी, उसी से वह अब शिव मार्ग को साधता है और उसे शरीर वास छूटकर सिद्ध पद प्राप्त होता है। भेद-ज्ञान कला से जीव ऐसा अनुभव करता है – ''चेतनरूप अनूप अमूरत सिद्ध समान सदा पद मेरो' अपने ही वेदन से वह नि:शंक जानता है कि 'ज्ञान कला उपजी अब मोहि' मुझे ज्ञान कला उपजी है, उसके प्रसाद से मैं मोक्षमार्ग को साध रहा हूँ और अल्पकाल में इस भव से छूटकर मैं सिद्धपद को प्राप्त करूँगा।

ऐसे आत्मज्ञान की अपारमहिमा और अपार कीमत जाननी चाहिए। अरे ! अनन्त चैतन्यगुणों में बसनेवाला मैं, इस मिट्टी के घर में ममता करके बसना मुझे शोभा नहीं देता। मैं देह नहीं, मैं तो देह से भिन्न ज्ञानस्वरूप आत्मा हूँ – ऐसा सम्यग्ज्ञान होने पर अब ज्ञानकला जगी है, उस ज्ञानकला के प्रसाद से अब इस मिट्टी के घड़े में से छूट जाऊँगा और अशरीरी होकर सिद्धालय में रहूँगा, फिर कभी इस शरीर में या संसार में नहीं आऊँगा। देखो ! यह सम्यग्ज्ञान का प्रसाद !! ऐसे ज्ञान के प्रसाद से मुक्ति प्राप्त होती है। सम्यग्ज्ञान के प्रताप से अब इस हाड़-मांस के

पिंजरे में रहना बन्द हो जावेगा और आनन्दमय मोक्ष महल में सदा रहूँगा। इसप्रकार सम्यग्ज्ञान के अमृत से जन्म-मरण का रोग मिटता है और परम सुख होता है। जगत में जीव को ज्ञान समान अन्य कोई सुख का कारण नहीं है – इसप्रकार सम्यग्ज्ञान की महिमा जानकर उसकी आराधना करो।

सम्यग्दर्शन के साथ ही सम्यग्ज्ञान होता है और सम्यग्दर्शन-ज्ञानपूर्वक ही सच्चा चारित्र होता है। उसमें सम्यग्दर्शन तो पर से भिन्न शुद्धात्मा की श्रद्धारूप है और पर से भिन्न निजस्वरूप का ज्ञान सम्यग्ज्ञान कहलाता है। जब आत्मा को शरीरादि से भिन्न तथा रागादि परभावों से भिन्न निज स्वरूप से अनुभव में लिया, तब सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान एकसाथ प्रकट हुआ। जिसने देह से भिन्न आत्मा को नहीं जाना और देह में ही अपनापन मानकर रुक गया, उसको आत्मा का सम्यग्दर्शन या सम्यग्ज्ञान नहीं हो सकता। शरीर से भिन्न आत्मा न जाना तो फिर शरीर रहित सिद्धपद कहाँ से पायेगा ? वह चाहे जितना व्रत-तप करे तथापि मोक्ष को भी नहीं पा सकता। उस अज्ञानी के सम्यग्ज्ञान बिना करोड़ों जन्मों में तप करने से जितने कर्म खिरते हैं, उतने कर्म (उनसे भी अधिक कर्म) ज्ञानी के शुद्ध ज्ञान के बल से एक क्षण खिर जाते हैं। उसने रागादि बन्ध भावों से अपने आत्मा को भिन्न जाना है और वह मोक्षमार्गी हुआ है, सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान के प्रभाव से उसके अनन्त कर्मों की निर्जरा हुआ ही करती है।

सम्यग्ज्ञान ही आत्मा के सुख का कारण है। सम्यग्ज्ञान कहते ही उसके साथ का चारित्र भी सुख का कारण है – ऐसा समझ लेना और ज्ञान के बिना कोई भी आचरण जीवको सुख का कारण नहीं होता – ऐसा जानना। उस सम्यग्ज्ञान में मति-श्रुतादि पाँच प्रकार हैं, उनमें से अवधि-मन:पर्यय तो हो या न हो वास्तविक कार्य तो स्वसन्मुख मति-श्रुतज्ञान से होता है। जो पर लक्ष्य छोड़कर, शुभ विकल्प से भी छूटकर, ज्ञानस्वरूप आत्मा को स्वज्ञेय बनाकर जाने वह सम्यक् मति-श्रुतज्ञान है, वह ज्ञान अतीन्द्रिय आनन्द सहित है, स्वानुभव में प्रत्यक्ष है और मोक्ष का साधक है। हे भाई ! ज्ञान के अन्तर अभ्यास से तू ऐसे आत्मा को अनुभव में ले। (आपो लख लीजे) भगवान द्वारा कथित तत्त्व का अन्तरंग में अभ्यास करके,

संदेह रहित होकर अपने ज्ञानस्वरूप आत्मा को जान, क्योंकि बारबार चिन्तामणि समान ऐसा अमूल्य अवसर मिलना कठिन है – यह बात अगली गाथा में कहेंगे।

अपने ज्ञानस्वरूप आत्मा के चैतन्य स्वाद को राग से अत्यन्त भिन्न जानना ही सम्यक् मति-श्रुतज्ञान का उपाय है। ऐसे ज्ञान के अतिरिक्त अन्य कोई सुख का कारण नहीं है। सुख शरीर में तो नहीं, शुभराग में भी नहीं और उससे पुण्य बांधकर उसमें मिलनेवाले फल में भी नहीं। भाई, यह बाहर की वस्तु तेरी नहीं, वह तेरे में घुस नहीं गई। वह तुझसे पर है, फिर भी तू उसमें ममता करके आकुलता करता है, वही दु:ख है। तेरा आत्मा तो ममता से भी जुदा ज्ञानस्वरूप करता है, वही दु:ख है। तेरा आत्मा तो ममता से भी जुदा ज्ञानस्वरूप है, ऐसे ज्ञानस्वरूप आत्मा का लक्ष्य करके उसका ज्ञान कर। भाई, तूने अपनी सम्हाल नहीं की, अज्ञान से अपने को भूलकर राग और शरीर में धर्म मानकर अनन्त बार तूने व्रत-तप किये, महान शास्त्र भी पढे, किन्तु अपना ज्ञानस्वरूप चैतन्य भगवान आत्मा अन्दर राग से भिन्न कैसा है, उसे नहीं जाना, इसलिए तूने किंचित् भी सुख नहीं पाया, व्रतादि का शुभराग करके भी तू दु:खी ही रहा, इसलिए उस राग से भिन्न दूसरा कोई सुख का उपाय खोजा। वह उपाय सम्यग्ज्ञान ही है। शुभराग कहीं अमृत नहीं है, उसमें सुख नहीं है, अमृत और सुख तो आत्मा के ज्ञान करने में ही है। इसलिए कहा है –

ज्ञान समान न आन जगत में सुख को कारन।
इह परमामृत जन्म-जरा-मृत राग निवारन।।

अन्तर में राग से पार आत्मा का ज्ञान करना ही अतीन्द्रिय आनन्द दाता अमृत है। चौथे गुणस्थान में जहाँ ऐसा सम्यग्ज्ञान हुआ, वहाँ केवलज्ञान की प्रतीति भी साथ आ गई, क्योंकि पूर्ण ज्ञानस्वभाव के स्वीकार पूर्वक सम्यग्ज्ञान हुआ है। अहो ? अचिन्त्य सामर्थ्यवाले केवलज्ञान की प्रतीति तो राग और ज्ञान के भेद-ज्ञान से ही होती है। ज्ञानस्वभाव में प्रतीति घुस गई, तब केवलज्ञान का सच्चा स्वीकार हुआ, उसकी परिणति राग से छूटकर ज्ञानस्वभाव में तन्मय हुई, उसमें अब राग अथवा पर का कर्तव्य नहीं रहा। राग सहित केवलज्ञान की प्रतीति करे और रागादि का कर्तव्य भी रहे – ऐसा नहीं बनता। केवलज्ञान की प्रतीति करनेवाले ज्ञान में तो अनन्त धीरज

(शेष पृष्ठ 26 पर ...)

नियमसार प्रवचन –

एषणा समिति का स्वरूप

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम नियमसार के शुद्धभावाधिकार की 63वीं गाथा पर हुये आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्मरस गर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है।

छंद मूलत: इसप्रकार है –

कदकारिदाणुमोदणरहिदं तह पासुगं पसत्थं च।
दिण्णं परेण भत्तं समभुत्ती एसणासमिदी।।६३।।

(हरिगीत)

स्वयं करना कराना अनुमोदना से रहित जो।
निर्दोष प्रासुक भुक्ति ही है एषणा समिति अहो।।६३।।

स्वयं की कृत, कारित, अनुमोदना से रहित, पर के द्वारा दिया हुआ प्रासुक और प्रशस्त भोजन करनेरूप सम्यक् आहार ग्रहण एवं तत्संबंधी शुभभाव एषणासमिति है।

(गतांक से आगे....)

निर्दोष आहार-पानी लेने की वृत्ति वह एषणासमिति है। मुनि अपने लिए बनाया हुआ अन्न-पानी ग्रहण नहीं करते। मन-वचन-काय तथा कृत-कारित-अनुमोदन, इन नवकोटि से अशुद्ध आहारादि मुनिराज नहीं स्वीकार करते। वह तो प्रासुक अर्थात् अचित्त, जीवरहित भोजन और जल भी उष्ण लेते हैं। प्रशस्त अर्थात् अच्छा, शास्त्र में जिसकी प्रशंसा की गई हो, व्यवहार में जो प्रमादादि अथवा रोग का निमित्त न हो, ऐसे भोजन ग्रहण करने का शुभभाव वह व्यवहार एषणासमिति है। मुनि को अन्दर निश्चयस्वभाव का भान है, सहज दशा से भ्रमण करते हुए आहार मिले उससमय खाने की क्रिया तो उसके अपने कारण से होती है, तब जो अन्दर में विकल्प होता है उसकी यहाँ बात है।

मन-वचन-काय में से प्रत्येक को कृत-कारित-अनुमोदना सहित गिनने पर उसके नौ भेद होते हैं। उनसे संयुक्त भोजन नवकोटि से विशुद्ध नहीं है – ऐसा शास्त्र में कहा है। तीव्र राग टूट जाने के कारण सचित्त आहार मुनिराज नहीं लेते – ऐसी

उनकी सहजदशा है, वे आहार के लिए मौन होकर निकलते हैं। गृहस्थ प्रतिग्रह करे कि ''तिष्ठो, तिष्ठो, तिष्ठो आहार-जल शुद्ध है'' – ऐसा कहकर आहार ग्रहण करने की प्रार्थना करे, मुनि कृपा करें तो आहारदाता श्रावक अपने घर में ले जाकर उच्चस्थान पर उन्हें विराजमान करके, चरण धोकर पूजन करता है और प्रणाम करता है, पश्चात् मन-वचन-काय की शुद्धिपूर्वक शुद्ध मिश्रा देता है। श्रद्धा आदि सात गुणों का धारक दाता प्रतिग्रह आदि नवधाभक्तिपूर्वक आहार देता है। मुनि आहार के लिए निकलें तब घण्टे दो घण्टे का जो समय लगे उसमें भी हजारों बार छठा-सातवाँ गुणस्थान आ जाता है – इसका नाम भावलिंगी मुनि है।

श्रावक श्रद्धादि सात गुणों वाला होता है। क्योंकि उसको बहुमान है कि नहीं, आहारदान की शक्ति है कि नहीं, उसको भक्ति है कि नहीं, वह निःस्पृही है कि नहीं, इत्यादि तथा उसको सच्चा ज्ञान है कि नहीं, यह सब जानना चाहिए। यह सब गुण जिसमें हों उसी के यहाँ मुनि भिक्षा लेते हैं। छठे गुणस्थान में वर्त्तते मुनि की दृष्टि राग के ऊपर नहीं, अपितु स्वभाव के ऊपर है। वे उपर्युक्त लक्षण वाले श्रावक के यहाँ ही आहार लेते हैं। वह श्रावक दयालु हो, क्रोधी न हो, शुद्ध-योग्य आचारवाला हो, मुख्यपने भानवाला (आत्मज्ञानी) होता है, अन्यथा व्यवहार आचारवाला तो होवे ही। ऐसी दशा दातार और पात्र की सहज होती है।

मुनिराज की सहजदशा है। जब वे आहार के लिए निकलें और मार्ग में कहीं रुदन सुनाई पड़े अथवा आग लगी दिखाई पड़े तो वे अन्तर विचार में उतर जाते हैं कि ''अरे! मैं तो वीतराग मार्ग में चलनेवाला हूँ – शान्तिजनक नित्यस्वभाव में रहनेवाला हूँ – वहाँ यह रुदन और अनित्यता कैसी?'' ऐसा सोचकर तुरन्त आहार-सम्बन्धी विकल्प तोड़कर स्वरूप में ठहर जाते हैं। यह सहजस्वभाव है, इसमें हठ नहीं होता। इस तरह मुनि निर्दोष भोजन लेते हैं – वह भोजनसमिति है। इसप्रकार व्यवहारसमिति का क्रम है।

निश्चय से तो ऐसा है कि जीव को परमार्थ से आहार नहीं है। परमतपोधन तो अनाकुल रस के घूँट पीते हैं, उन्हें वास्तव में अशन नहीं है। छह प्रकार का अशन व्यवहार से संसारियों को ही होता है।

श्रीप्रवचनसार की अवतरण गाथा लेकर कहा है कि – नोकर्म आहार आदि छह प्रकार का आहार है – वह अशुद्ध जीवों का विभावधर्मविषें व्यवहारनय का

उदाहरण है।

अब निश्चय से ऐसा है कि – जीव को परमार्थ से अशन नहीं है; छह प्रकार का अशन व्यवहार से संसारियों को ही होता है।

इसीप्रकार कहा है कि :–

णोकम्मकम्महारो लेप्याहारो य कवलमाहारो।
उज्ज मणो वि य कमसो आहारो छव्विहो णेयो।।

(दोहा)

लेप कवल मन ओज अर कर्म और नो कर्म।
छह प्रकार आहार के कहे गये जिनधर्म।।

गाथार्थ :– नोकर्म-आहार, कर्म-आहार, लेप-आहार, कवल-आहार, ओज-आहार और मन-आहार – ऐसा क्रमशः छह प्रकार का आहार जानना।

मुनि को विकल्प उठता है उसका वह ज्ञान करते हैं, आहार जीव नहीं लेता। छठे गुणस्थान में जो विकल्प उठा है, वह विभाव है। एषणासमिति का शुभराग है वह पुण्यभाव है – विकार है – वह विभावधर्म है, स्वभावधर्म नहीं। स्वभावधर्म तो अन्दर प्रकट हुई शान्ति है, किन्तु उस भूमिका में विकल्प आए बिना रहता नहीं, तथापि मुनिराज उसे बन्ध का कारण जानते हैं।

अशुद्धजीवों के विभावधर्म सम्बन्ध में व्यवहारनय का यह (अवतरण की हुई गाथा में) उदाहरण है। **(क्रमशः)**

(पृष्ठ 23 का शेष ...)

और वीतरागता हो गई, उस भाव में किसी परभाव का कर्तव्य नहीं रहा। सर्व परभावों से न्यारा मैं तो ज्ञान हूँ – ऐसे भेदज्ञान से ज्ञानी जीव वीर हुआ, वह स्वयं तो अब ज्ञाता होकर सम्यग्ज्ञान रूप से ही परिणमता है, रागाधीन नहीं होता, राग से उसका ज्ञान दबता नहीं भिन्न ही रहता है। ऐसे ज्ञान के बिना जगत में सुख नहीं। अरे, जिस ज्ञान ने महान अतीन्द्रिय केवलज्ञान की प्रतीति में लिया, वह ज्ञान भी कितनी अद्भुत शक्तिवाला है। उसमें कितनी शान्ति है। केवलज्ञान को प्रतीति में लेकर ऐसी अपूर्व ज्ञान दशा प्रगट हो, तब तो 'णमो अरहंताणं' ऐसा कहना सच्चा होगा, वह जीव सच्चा जैन होकर जिनमार्ग में चलना प्रारम्भ करता है। **(क्रमशः)**

ज्ञान गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा
पूज्य स्वामीजी से पूछे गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर

प्रश्न : पर्याय स्वतंत्र होते हुए भी उसका लक्ष द्रव्य पर ही क्यों होता है ?

उत्तर : द्रव्य पर लक्ष हो तभी पर्याय की स्वतंत्रता की यथार्थ श्रद्धा हो सकती है, पर की ओर लक्ष होने से नहीं और पर्याय की स्वतंत्रता के निर्णय का प्रयोजन भी द्रव्यसन्मुख होने से ही सिद्ध होता है। द्रव्यसन्मुख होने के प्रयोजन से ही पर्याय की स्वतंत्रता दिखती है।

प्रश्न : व्यय होनेवाली पर्याय के संस्कार अगली उत्पाद होनेवाली पर्याय में आते हैं या नहीं ?

उत्तर : पर्याय तो व्यय होकर ध्रुव में मिल जाती है; अत: व्यय होनेवाली पर्याय उत्पाद होनेवाली पर्याय में कोई संस्कार नहीं डालती।

पूर्व का संस्कार उत्तरपर्याय में आता है – यह तो बौद्धमत है, यह खोटी मान्यता है। उत्पाद की पर्याय को व्यय की अपेक्षा नहीं है, वह तो स्वतंत्र है।

प्रश्न : तो फिर नई पर्याय में (उत्पाद की पर्याय में) पूर्व का स्मरण आता है – वह कहाँ से आता है ?

उत्तर : उत्पाद की पर्याय में स्मरण आता है – वह उत्पाद की सामर्थ्य से आता है। व्यय की पर्याय में जो ज्ञान था, उससे अधिक ज्ञान उत्पाद की पर्याय में आ सकता है; परन्तु वह उसकी स्वयं की सामर्थ्य के कारण से आता है।

प्रश्न : ज्ञायक आत्मा का अवलम्बन अकेले ज्ञानगुण की पर्याय लेती हैं या अनन्तगुणों की पर्यायें अवलम्बन लेती है ?

उत्तर : ज्ञायक आत्मा का अवलम्बन अनन्तगुणों की पर्यायें लेती है। ज्ञान से तो बात की है, वैसे अवलम्बन तो सभी गुणों की पर्यायें ज्ञायक का ही लेती है।

प्रश्न : निज द्रव्य की अपेक्षा विना पर्याय होती है – इसका क्या अर्थ है ?

उत्तर : ध्रुवद्रव्य तो त्रिकाल एकरूप ही है और पर्याय भिन्न-भिन्न रूप से होती है। वह पर्याय अपनी योग्यतानुसार स्वकाल में स्वतंत्ररूप से होती है।

प्रश्न : यदि ध्रुवद्रव्य की अपेक्षा लेवे तो क्या बाधा है ?

उत्तर : ध्रुवद्रव्य की अपेक्षा लेने से व्यवहार हो जाता है। पर्याय, पर्याय के

स्वकाल से होती है – यह पर्याय का निश्चय है।

प्रश्न : पर्याय व्यय होकर द्रव्य में ही समाविष्ट हो जाती है। यदि ऐसा है तो क्या अनन्त अशुद्ध पर्यायों के द्रव्य में समावेश हो जाने से द्रव्य को हानि नहीं पहुँचती ?

उत्तर : अशुद्धता तो प्रकट पर्याय में अर्थात् मात्र वर्तमान वर्तती हुई पर्याय में ही निमित्त के लक्ष से होती है। वह पर्याय व्यय होकर द्रव्य में समा जाने पर पर्यायरूप से नहीं रहती, अपितु पारिणामिकभावरूप हो जाती है। द्रव्य में विकार पड़ा नहीं, इसलिए उसमें कभी भी हानि नहीं होती।

प्रश्न : पर्याय द्रव्य का स्पर्श ही नहीं करती तो आनन्द किसप्रकार आता है ?

उत्तर : पर्याय द्वारा द्रव्य का स्पर्श न किये जाने पर भी सम्पूर्ण द्रव्य का ज्ञान पर्याय में आ जाता है; तथापि द्रव्य पर्याय में नहीं आता। धर्मी और धर्म दो वस्तुयें है, पर्याय व्यक्त है और ध्रुव वस्तु अव्यक्त है। यद्यपि यह व्यक्त और अव्यक्त दोनों धर्म एक ही वस्तु के हैं तो भी व्यक्त-अव्यक्त को स्पर्श नहीं करता; परन्तु पर्याय का लक्ष द्रव्यसन्मुख है; इसलिये पर्याय आनन्दरूप परिणमन करती है।

प्रश्न : दर्शनोपयोग में शुभ और अशुभ ऐसे भेद पड़ते हैं कि नहीं ?

उत्तर : नहीं ! शुभ और अशुभ - ऐसे भेद न तो दर्शनोपयोग में हैं और न ज्ञानोपयोग में हैं; यह तो चारित्र के आचरणरूप उपयोग के भेद हैं। चारित्र के आचरण में शुभ, अशुभ और शुद्ध ऐसे तीनप्रकार हैं; उन्हें शुभ, अशुभ अथवा शुद्ध उपयोग कहा जाता है।

प्रश्न : क्या बिना गुण की कोई पर्याय होती है ?

उत्तर : हाँ ! भव्यता वह पर्याय है; परन्तु उसका कोई गुण नहीं होता। गुण न होने पर भी भव्यत्व पर्याय होती है और सिद्धदशा होने पर वह पर्याय नहीं होती।

प्रश्न : पर्याय उससमय की सत् है, निश्चित है, ध्रुव है – ऐसा कहने का प्रयोजन क्या है ?

उत्तर : पर्याय के ऊपर से लक्ष छोड़कर ध्रुवद्रव्य की तरफ ढलने का प्रयोजन है। पर्याय उससमय की सत् है, निश्चित है, ध्रुव है – ऐसा बताकर, उसके ऊपर का लक्ष छुड़ाकर ध्रुवद्रव्य की ओर लक्ष कराने का प्रयोजन है। पर्याय निश्चित है, ध्रुव है अर्थात् पर्याय उससमय की सत् होने से आगे-पीछे हो सके – ऐसा नहीं है, इसप्रकार जाने तो दृष्टि द्रव्य के ऊपर जावे और द्रव्य के ऊपर लक्ष जाने से वीतरागता उत्पन्न हो। वीतरागता ही मूल तात्पर्य है। अरे ! ऐसी बात करोड़ों रुपया अर्पण करने पर भी मिलनेवाली नहीं है। अहा ! जिसके जानने पर वीतरागता उत्पन्न हो, भला उसकी कीमत क्या ? वह तो अनमोल है।

समाचार दर्शन -

देशभर में धूमधाम से मनाया गया उपकार दिवस

(1) दिल्ली : आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी की 126वीं जन्मजयंती के पावन प्रसंग पर एवं श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल दिल्ली के 50 वर्ष पूर्ण होने पर दिनांक 20 अप्रैल को श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल दिल्ली एवं अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन उस्मानपुर दिल्ली के तत्त्वावधान में स्वर्ण जयन्ती महोत्सव, उपकार दिवस एवं विज्ञान वाटिका पुरस्कार वितरण समारोह सानन्द संपन्न हुआ।

इस अवसर पर अन्तरराष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल, ब्र. सुमतप्रकाशजी खनियांधाना, पण्डित धनसिंहजी ज्ञायक पिड़ावा, पण्डित संजयजी शास्त्री मंगलायतन, पण्डित विरागजी शास्त्री जबलपुर एवं अनेक स्थानीय विद्वानों का समागम प्राप्त हुआ।

कार्यक्रम की अध्यक्षता श्री अजितप्रसादजी दिल्ली ने की एवं मुख्य अतिथि श्री सत्येन्द्र जैन (वित्त एवं स्वास्थ्य मंत्री, दिल्ली) थे। इस कार्यक्रम में श्री त्रिलोकचंदजी जैन, श्री जयपालजी एवं श्री नरेशजी का सम्मान किया गया। अखिल भारतीय स्तर पर आयोजित विज्ञान वाटिका प्रतियोगिता में 108 प्रतियोगियों को 108 विशेष पुरस्कारों से एवं सभी प्रतियोगियों को एक-एक किट भेंट में देकर सम्मानित किया गया। इसी श्रंखला में देशभर में तत्त्वार्थसूत्र कण्ठस्थ करने वाले सभी महानुभावों का सम्मान किया गया।

इस अवसर पर लगभग 1500 साधर्मियों ने प्रवचन, भक्ति एवं कवि सम्मेलन जैसे कार्यक्रमों का भरपूर लाभ लिया।

कार्यक्रम का संचालन पण्डित संदीपजी शास्त्री एवं संयोजन पण्डित ऋषभजी शास्त्री ने किया।

(2) मंगलायतन (उ.प्र.) : आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी की 126वीं जन्मजयंती के उपलक्ष्य में दिनांक 17 से 21 अप्रैल तक आयोजित पंच दिवसीय उपकार समर्पण समारोह सानन्द संपन्न हुआ।

इस अवसर पर गुरुदेवश्री के वीडियो सी.डी. प्रवचनों के अतिरिक्त तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल, पण्डित राजेन्द्रकुमारजी जबलपुर, पण्डित वीरेन्द्रकुमारजी आगरा, पण्डित कमलकुमारजी पिड़ावा, पण्डित देवेन्द्रकुमारजी जैन मंगलायतन, डॉ. संजीवकुमारजी गोधा जयपुर, डॉ. योगेशजी जैन अलीगंज, पण्डित राजकुमारजी शास्त्री बांसवाड़ा,पण्डित संजयजी शास्त्री मंगलायतन, पण्डित संजीव जैन दिल्ली आदि अनेक विद्वानों के प्रवचनों व गोष्ठियों के माध्यम से लाभ प्राप्त हुआ। बालकक्षा पण्डित बाबूभाई मेहता फतेहपुर द्वारा चलाई गई।

कार्यक्रम का शुभारंभ जिनेन्द्र शोभायात्रा से हुआ। तत्पश्चात् ध्वजारोहण श्री निहालचंद्रजी जैन जयपुर द्वारा हुआ।

इस अवसर पर रत्नत्रय मंडल विधान का उद्घाटन श्री महाचन्दजी जैन भीलवाड़ा ने किया। विधि-विधान के समस्त कार्य पण्डित संजयजी शास्त्री मंगलायतन व मंगलार्थी छात्रों द्वारा संपन्न हुये।

समारोह में कारंजा, नागपुर, चैतन्यधाम, बांसवाड़ा, खनियांधाना, सोनागिर, मंगलायतन आदि विद्यालयों के छात्रों एवं बालिका संस्कार संस्थान उदयपुर की छात्राओं द्वारा कण्ठपाठ प्रतियोगिता, जिनवाणी सज्जा प्रतियोगिता तथा गुरुदेवश्री के जीवन पर प्रभावी नाट्य कार्यक्रम का आयोजन किया गया, जिसे सभी लोगों ने पसन्द किया।

(3) चैतन्यधाम-अहमदाबाद (गुज.) : यहाँ आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी की 126वीं जन्मजयंती दिनांक 19 अप्रैल को उपकार दिवस के रूप में मनाई गई।

इस अवसर पर गुरुदेवश्री के सी.डी. प्रवचन के अतिरिक्त पण्डित शैलेषभाई तलोद का विशेष व्याख्यान हुआ।

कार्यक्रम में मुमुक्षु मण्डल मलाड-मुम्बई द्वारा गुरुदेवश्री के जीवन पर आधारित विशेष नाटिका प्रस्तुत की गई। देशभर से लगभग 2500 साधर्मियों ने कार्यक्रम का लाभ लिया।

कार्यक्रम का संचालन पण्डित सचिनजी शास्त्री ने किया।

इन्द्रध्वज महामण्डल विधान संपन्न

सोलापुर (महा.) : यहाँ गांधी नाथारंगजी दिगम्बर जैन बोर्डिंग के मैदान पर श्री इन्द्रध्वज मण्डल विधान दिनांक 26 अप्रैल से 2 मई तक संपन्न हुआ।

इस अवसर पर अनेक वर्षों बाद सोलापुर में डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल पधारे और उनके 'णमोकार महामंत्र' पर सरल-सुबोध भाषा में हुये प्रवचन बहुत सराहे गये। साथ ही पण्डित जितूभाई, पण्डित आलंडकर आदि विद्वानों के प्रवचनों का भी लाभ मिला।

विधान के अवसर पर थ्रीडी एनिमेशन द्वारा अकृत्रिम चैत्यालयों की प्रोजेक्टर पर पण्डित विक्रान्तजी शहा की प्रस्तुति विशेष प्रशंसनीय रही। विधान में लगभग 250 इन्द्र-इन्द्राणी बनकर सम्मिलित हुये और लगभग 1500-2000 साधर्मियों ने प्रवचनों का लाभ लिया।

विधान के समस्त कार्य पण्डित सुनील-अनिल-दीपकजी धवल भोपाल द्वारा शुद्ध तेरापंथाम्नायानुसार सम्पन्न हुये।

इस अवसर पर जैनधर्म के प्रचार-प्रसार में अभूतपूर्व योगदान के लिये डॉ. भारिल्लजी का सार्वजनिक अभिनन्दन भी किया गया।

शिलान्यास समारोह संपन्न

ललितपुर (उ.प्र.) : यहाँ श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मण्डल ललितपुर द्वारा निर्माणाधीन श्री 1008 दिगम्बर जैन शीतलनाथ जिनमंदिर वेदी एवं शिखर का भव्य शिलान्यास समारोह दिनांक 6 मई को अत्यंत हर्षोल्लास सहित संपन्न हुआ।

इस अवसर पर दिनांक 3 मई को पण्डित नन्हे भैया सागर द्वारा तीनों समय समयसार, मोक्षमार्गप्रकाशक एवं रत्नकरण्ड श्रावकाचार पर एवं दिनांक 4 मई को पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री देवलाली द्वारा मोक्षमार्गप्रकाशक पर प्रवचन का लाभ मिला।

दिनांक 6 मई को प्रात:काल जिनेन्द्र-पूजन के उपरांत शिलान्यास शोभायात्रा श्री सीमन्धर जिनालय से प्रारम्भ हुई, जिसमें केसरिया साड़ी पहने महिलायें मंगल कलश, जिनवाणी एवं रत्नत्रय प्रतीक को लेकर चल रही थीं। साधर्मी पुरुष वर्ग श्वेत वस्त्रों में भजन गाते हुये चल रहे थे। शोभायात्रा शहर के प्रमुख मार्ग से होती हुई शिलान्यास स्थल के निकट जगदीश मार्केट धर्मशाला में पहुँची, जहाँ शिलान्यास सभा संपन्न हुई।

सभा का प्रारम्भ पण्डित गोकुलचंदजी सरोज के मंगलाचरण से हुआ। पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री देवलाली ने प्रासंगिक मार्मिक उद्बोधन दिया। ब्र. अभिनन्दनकुमारजी शास्त्री खनियांधाना ने उद्बोधन एवं प्रशस्ति-पत्र पढकर सुनाये। ब्र. कैलाशचंदजी अचल, श्री वज्रसेनजी दिल्ली, श्री अनिलजी अंचल एवं श्री सतीशजी नजा ने अपने विचार व्यक्त किये। श्री सुभाषजी जयसवाल ने अध्यक्षीय उद्बोधन दिया एवं श्री मुन्नालालजी अभिलाषा ने सभी महानुभावों का आभार व्यक्त किया। सभा का कुशल संचालन श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मण्डल के निर्देशक श्री सुरेशकुमारजी एडवोकेट बानपुरवालों ने किया।

शिलान्यास स्थल पर विधि-विधानपूर्वक ब्र. अभिनन्दनजी शास्त्री खनियांधाना एवं सहयोगी प्रतिष्ठाचार्यों के माध्यम से श्री करतार चन्द अभिलाष परिवार द्वारा ध्वजारोहण किया गया। तत्पश्चात् वेदी एवं शिखर शिलान्यास सम्पन्न हुआ। वेदी शिलान्यासकर्ता श्री प्रदीपजी किशनगढ एवं शिखर शिलान्यासकर्ता श्री प्रेमचन्दजी बजाज कोटा की अनुपस्थिति में विद्वत्वर्ग के माध्यम से शिलान्यास किया गया।

स्वाध्याय भवन का उद्घाटन एवं रत्नत्रय मण्डल विधान संपन्न

नवी मुम्बई : यहाँ श्री कुन्दकुन्द दिगम्बर जैन स्वाध्याय भवन वाशी का उद्घाटन समारोह दिनांक 3 मई को रत्नत्रय मण्डल विधानपूर्वक संपन्न हुआ।

इस अवसर पर गुरुदेवश्री के सी.डी. प्रवचनों के अतिरिक्त पण्डित हेमन्तभाई गांधी, ब्र. अभिनन्दनजी खनियांधाना, पण्डित जितेन्द्रप्रकाशजी दोशी आदि विद्वानों द्वारा प्रवचनों का लाभ मिला।

विधि-विधान के समस्त कार्य ब्र. अभिनन्दनजी शास्त्री खनियांधाना द्वारा संपन्न हुये।

बाल संस्कार शिविर संपन्न

(1) जबलपुर (म.प्र.) : यहाँ अ. भा. जैन युवा फैडरेशन एवं दिगम्बर जैन सोशल ग्रुप वात्सल्य के संयुक्त तत्त्वावधान में दिनांक 5 से 13 मई तक षष्ठम जैनत्व बाल संस्कार शिक्षण शिविर संपन्न हुआ।

इस अवसर पर पण्डित बाबूभाई मेहता, डॉ. मनोज जैन, ब्र. श्रेणिक जैन, पण्डित संतोषजी शास्त्री एवं टोडरमल सिद्धांत महाविद्यालय जयपुर के 15 विद्वानों का लाभ प्राप्त हुआ। प्रात:काल जिनेन्द्र-पूजन के अतिरिक्त वर्गवार सामूहिक कक्षाओं का आयोजन हुआ। दोपहर में सामूहिक कक्षाओं में विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन हुआ। रात्रि में जिनेन्द्र-भक्ति के पश्चात् पण्डित विरागजी शास्त्री द्वारा संगीतमय कथा व अन्य ज्ञानवर्धक सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन हुआ।

शिविर में लगभग 450 बालक-बालिकाओं ने जैनत्व के संस्कार ग्रहण किये।

(2) इन्दौर (म.प्र.) : यहाँ श्री दिगम्बर जैन कुन्दकुन्द परमागम ट्रस्ट साधना नगर द्वारा दिनांक 3 से 10 मई तक आयोजित आठ दिवसीय संस्कार शिविर उत्साहपूर्वक संपन्न हुआ।

इस अवसर पर पण्डित रितेशजी शास्त्री सनावद एवं पण्डित अशोकजी शास्त्री राघौगढ के अतिरिक्त टोडरमल सिद्धांत महाविद्यालय, बांसवाड़ा व कोटा महाविद्यालय के शास्त्री विद्वानों का भी लाभ मिला।

शिविर में लगभग 700 बालक-बालिकाओं ने जैनत्व के संस्कार ग्रहण किये। अन्तिम दिन पुरस्कार वितरण समारोह के अन्तर्गत प्रथम, द्वितीय व तृतीय रहे छात्रों को पुरस्कार व सर्टिफिकेट देकर सम्मानित किया गया।

इस शिविर की विशेषता यह है कि पूर्णत: नि:शुल्क शिविर पिछले 14 वर्षों से संचालित हो रहा है। सभी बच्चों को शिविर से संबंधित सामग्री, भोजन व आवागमन सुविधा नि:शुल्क प्रदान की जाती है। **– विजय बड़जात्या, इन्दौर**

आगामी कार्यक्रम...

अखिल भा.दि. जैन विद्वत्परिषद एवं 'आशा' के संयुक्त तत्त्वावधान में 15 से 17 जून तक श्री दिग. जैन मंदिर वसुन्धरा सेक्टर 10 गाजियाबाद (उ.प्र.) में रत्नत्रय शिक्षण शिविर का आयोजन किया जा रहा है।

इस शिविर में प्रमुख वक्ता के रूप में डॉ. अशोक जैन गोयल शास्त्री (मंत्री विद्वत्परिषद्) पधारेंगे। शिविर की आयोजक महिला जैन समाज एम.पी. जैन इंदिरापुरम् गाजियाबाद हैं।

समय : सायंकाल 7 से 9 तक अवश्य लाभ लें। – अखिल बंसल, जयपुर

अध्यात्म मनीषियों का विशेष सम्मान

मंगलायतन (उ.प्र.) : यहाँ उपकार दिवस के अवसर पर आध्यात्मिक सत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी द्वारा उद्घाटित तत्त्वज्ञान को गतिशील बनाये रखने में जिन अध्यात्म मनीषियों का विशेष योगदान रहा, उन्हें दिनांक 18 अप्रैल को सम्मानित किया गया।

इस अवसर पर श्री सत्येन्द्र जैन (गृह, विद्युत, स्वास्थ्य, उद्योग एवं सार्वजनिक निर्माण मंत्री-दिल्ली सरकार) विशेष रूप से उपस्थित रहे।

समारोह में स्व. पण्डित कैलाशचंदजी जैन/मुकेशजी जैन, बाबू युगलजी कोटा (परोक्ष सम्मान), डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल जयपुर, पण्डित विमलचंदजी झांझरी उज्जैन, स्व. पण्डित धन्यकुमारजी भोरे/ भरत जैन भोरे, पण्डित ज्ञानचन्दजी विदिशा/प्रमोद जैन, पण्डित बाबूभाई मेहता फतेपुर, पण्डित देवेन्द्रकुमारजी जैन बिजौलिया आदि विद्वानों का सम्मान किया गया।

पंचपरमेष्ठी विधान संपन्न

जयपुर (राज) : यहाँ अ.भा.जैन युवा फैडरेशन जयपुर महानगर के तत्त्वावधान में मासिक पूजन की शृंखला में दिनांक 19 अप्रैल को आमेर स्थित कीर्ति स्तम्भ की नसियां में पंचपरमेष्ठी विधान का आयोजन किया गया। विधान के आयोजनकर्त्ता डॉ. श्रीयांसजी सिंघई जयपुर थे।

इस अवसर पर फैडरेशन के लगभग 200 सदस्य उपस्थित थे। विधान के उपरांत पण्डित शुद्धात्मप्रकाशजी भारिल्ल एवं पण्डित शान्तिकुमारजी पाटील के विशेष उद्बोधन प्राप्त हुये एवं बच्चों के लिये सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन किया गया।

अब... डॉ. भारिल्ल जिनवाणी चैनल पर

जिनवाणी JINVANI सुख, शान्ति, समृद्धि

जयपुर (राज.) : अखिल भारतीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् के राष्ट्रीय अध्यक्ष डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल के मर्मस्पर्शी प्रवचन अब जिनवाणी चैनल पर प्रात: 7.00 से 7.30 बजे तक नियमित दिखाये जायेंगे। यह क्रम एक वर्ष तक नियमित चलेगा। स्मरणीय है कि इसके पूर्व अहिंसा चैनल, साधना चैनल व जी-जागरण चैनल पर विगत 10 वर्षों से आपके नियमित प्रवचन प्रसारित किये जाते रहे हैं। **– अखिल बंसल**

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के समस्त ऑडियो – वीडियो प्रवचन साहित्य एवं अन्य अनेक जानकारियों के लिये अवश्य देखें –
वेबसाईट – www.vitragvani.com
संपर्क सूत्र-श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई
Ph.: 022-26130820, 26104912, E-Mail- info@vitragvani.com

श्री कुन्दकुन्द कहान दि. जैन तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट, मुम्बई द्वारा

ज्ञानतीर्थ श्री टोडरमल स्मारक भवन जयपुर में

38वाँ आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर

(रविवार, दिनांक 2 अगस्त से मंगलवार 11 अगस्त, 2015 तक)

शिविर में तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल एवं अन्य अनेक विद्वानों के प्रवचनों एवं कक्षाओं का लाभ प्राप्त होगा।

शिविर में जयपुर आने हेतु अपने टिकिट शीघ्र करा लेवें। कृपया आवास आदि की समुचित व्यवस्था हेतु अपने पधारने की पूर्व सूचना जयपुर कार्यालय को अवश्य भेजें।

शिविर में पधारने हेतु आप सभी सादर आमंत्रित हैं।

शोक समाचार

(1) मुम्बई निवासी श्रीमती जयाबेन जयन्तीलाल दोशी का दिनांक 30 अप्रैल को शांतपरिणामोंपूर्वक देहावसान हो गया। आप टोडरमल स्मारक द्वारा चलाई जा रही तत्त्वज्ञान के प्रचार-प्रसार की गतिविधियों में अनन्य सहयोगी थीं।

(2) भैंसरोडगढ-चित्तौड़गढ (राज.) निवासी श्री फूलचंदजी हरसौरा का दिनांक 25 अप्रैल को 88 वर्ष की आयु में शांतपरिणामोंपूर्वक देहावसान हो गया। ज्ञातव्य है कि आप टोडरमल महाविद्यालय के स्नातक पण्डित संजयजी हरसौरा के पिताजी थे। आपकी स्मृति में जैनपथप्रदर्शक हेतु 500/- रुपये प्राप्त हुये।

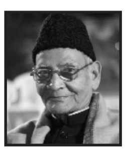

(3) जयपुर (राज.) निवासी श्री प्रसन्नकुमारजी सेठी का दिनांक 10 मई को 85 वर्ष की आयु में शांतपरिणामों सहित देहावसान हो गया। आप टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के ट्रस्टी स्व. महेन्द्रकुमारजी सेठी के लघु भ्राता थे। सन् 1953 में श्रीमान स्व. पूरनचंदजी गोदिका एवं अपने भाई महेन्द्रकुमारजी सेठी के साथ सोनगढ गये और तभी से आप पूज्य गुरुदेवश्री के मिशन के लिये समर्पित हो गये। जीवनभर आप तत्त्वज्ञान की गतिविधियों से अत्यंत गहराई के साथ जुड़े रहे। गुरुदेव भी अनेक बार आपको प्रवचनों आपको सम्बोधित कर प्रेरणा देते थे।

टोडरमल स्मारक द्वारा संचालित तत्त्वज्ञान की गतिविधियों में अनन्य सहयोगी थे। आपके देहावसान से मुमुक्षु समाज की अपूरणीय क्षति हुई है।

दिवंगत आत्मायें चतुर्गति के दु:खों से छूटकर शीघ्र ही अनंत अतीन्द्रिय आनंद को प्राप्त हों - यही मंगल भावना है।

तीर्थधाम ढाईद्वीप जिनायतन में 27900 स्क्वायर फीट डोम के अन्दर के प्लास्टर का दृश्य

R.N.I. No. 38278/83 *Postal Regd. No. JaipurCity/421/2015-17*

तीर्थधाम ढाईद्वीप जिनायतन में 27900 स्क्वायर फीट डोम के बाहर के प्लास्टर का दृश्य

ढाईद्वीप जिनायतन, इन्दौर
बढ़ते चरण...

सम्पादक :
डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल
शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., पीएच. डी.
सह–सम्पादक :
डॉ. संजीवकुमार गोधा
एम.ए.द्वय , नेट, एम. फिल (जैनदर्शन), पीएच.डी.
प्रकाशक एवं मुद्रक :
ब्र. यशपाल जैन, एम. ए.
द्वारा पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के लिये
जयपुर प्रिंटर्स प्रा.लि., जयपुर से
मुद्रित एवं प्रकाशित।

If undelivered please return to -- **Pandit Todarmal Smarak Trust , A-4, Bapu Nagar, Jaipur - 302015**